**International Journal of Multidisciplinary Education and Research**
**ISSN: 2455-4588; Impact Factor: RJIF 5.12**
**Received: 17-06-2019; Accepted: 21-07-2019**
**www.educationjournal.in**
**Volume 4; Issue 5; September 2019; Page No. 70-72**

# श्रीकांत वर्मा की आरंभिक कविताओं की जीवन दृष्टि

**डॉ. अमिय कुमार साहु**
एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी) एवं प्रमुख, भाषा संकाय, राष्ट्रीय रक्षा अकादमी, खड़कवासला, पुणे, महाराष्ट्र, भारत

**सारांश**
श्रीकांत वर्मा साठोत्तरी कविता के बहु-चर्चित और विवादास्पद कवि रहे हैं। इसके दो कारण हैं- एक तो कविता में नया प्रयोग और दूसरा राजनीति में उनकी हिस्सेदारी। उनकी आरंभिक कविता और बाद की कविताओं का स्वर एक-दूसरे के विरोधी हैं। उनकी पहले-पहल की कविताओं में जहां आस्था का भरमार दिखाता हैं, वहाँ बाद की कविताएं घुटन, निराशा, कुंठा से भरी हुहुई है। पर ये घुटन, निराशा, कुंठा एक रचनात्मकता के साथ सामने आती है। उनकी पूरी कविताओं के मर्म को समझने के लिए, उनकी आरंभिक कविताओं की जीवन दृष्टि को समझना बहुत ही आवश्यक है। इस शोध-लेख का उद्देश्य भी यही है।

**मूल शब्द: कविता, जीवनदृष्टि, नई कविता**

## प्रस्तावना
श्रीकांत वर्मा जब कवि के रूप में सामने आए तब हिंदी साहित्य में नई कविता का दौर था। तार- सप्तक का प्रकाशन हो चुका था और दूसरा सप्तक भी छप कर आ गया था। इस समय की कविता का नाम नई कविता पड़ गया था। श्रीकांत वर्मा ने इसका जोरदार स्वागत करते हुए इसे रोमांटिक नवोत्थान माना था। छायावादी रोमानीयत के बरक्स इसे बहुआयामी मानकर इसकी अनुभूति क्षेत्र की विराटता और आत्म सजगता के आधार पर इसकी सराहना की थी। बकौल श्रीकांत वर्मा "जहां हम छायावादी कविता का नाम लेते हैं वहां यह स्पष्ट कर देना जरूरी है कि छायावादी कविता की मूलत: रोमांटिक होने के काव्य विवेक के स्तर पर आज की कविता से बहुत भिन्न थी। वह अनेक बिंबो में एक ही अनुभव का उद्घाटन करती थी क्योंकि उसकी सांस्कृतिक वर्जनाओं और निषेधों ने उसके अनुभव क्षेत्र को सीमित कर दिया है, जबकि आज की कविता की सबसे बड़ी उपलब्धि है- वर्जना हीनता एवं अनुभव क्षेत्र की विराटता। वायवीय विराटता नहीं, ऐतिहासिक विराटता। अतः आवश्यकता इस बात की है कि इस स्वतंत्रचेता नव-उत्थान ने जातीय परंपराओं के विकास की जिन संभावनाओं को ऐतिहासिक धरातल पर अनुभव किया है, उसे उसकी अनुभूति का विवेक ही माना जाए। आज की कविता जातीय अनुभूति का विवेक है किसी एक के विवेक की अनुभूति नहीं"।[1]

## श्रीकांत वर्मा की आरंभिक कविताओं की जीवन दृष्टि
नयी कविता के कवियों की आस्था ज्यादा दिन तक नहीं रह सकी। आगे चलकर कवि की आत्म-सजगता व्यक्तिगत दायरे में सिमट गई। अज्ञेय ने तारसप्तक में जिसे व्यक्तित्व की खोज की बात कही थी, वह सही मायने में सामूहिक व्यक्तित्व की खोज होनी चाहिए थी; परंतु ऐसा नहीं हुआ। आगे चलकर यह व्यक्तित्व की खोज, कवि-व्यक्तित्व की खोज बनकर रह जाता है। इस व्यक्तित्व की खोज में कवि संवाद की ओर मुड़ा और अज्ञेय जिसे राहों के अन्वेषण की बात कही थी, वह राह इसी क्षणवाद में आकर समाप्त हो गई। यही कारण था कि श्रीकांत वर्मा का मोह इस कविता से टूट गया। उन्होंने भटका मेघ नामक काव्य-संग्रह में लिखा "क्षण को उजागर करने वाली इस लेखनी को जीवन में कहीं कोई सौंदर्य, प्रेम, आस्था के दर्शन नहीं होते। चारों ओर कटुता है, निराशा है, घृणा है, कुंठा है, अनास्था है, अराजकता है और ये सब बल्कि, यही सब सत्य है। मैं यह नहीं कहता कि आज के जीवन में यह सब नहीं, जो इस पर है कि यह महज स्थितियां हैं, यथार्थ हैं, सत्य नहीं। सत्य स्वयं में एक मूल्य होता है। इन स्थितियों को भेद कर इनके पास मानव की जीवंत एवं उच्चतर चित्तवृत्ति को देखने वाली दृष्टि ही जीवन दृष्टि होती है और साहित्य में एक ताजे, नए एवं बृहत्तर मानव व्यक्तित्व की स्थापना उसीके द्वारा होती है। उसके अभाव में राहों के अनवेषण, मूल्यों की खोज और व्यक्तित्व की खोज की शब्दावली कोई अर्थ नहीं रखती"।[2] इस समय लिखी गई उनकी कविताएं नई कविता की निराशा, घुटन, कुंठा अनास्था के विरुद्ध में अर्थात इन स्थितियों के विरुद्ध में सत्य की खोज की कविता है और यह आस्था के रास्ते से होकर चलती है। उनका पहला काव्य संग्रह 'भटका मेघ' और 'सरहद पार' में आस्था के प्रखर स्वर को देखा जा सकता है। हर अनास्था, निराशा, कुंठा को काटती हुई उनकी कविता में एक अपूर्व उल्लास मिलता है।

मैं बिन पंखुरी/ बिन टहनी का/ गंध फूल/ अब भी ताजा हूं/ सुरभित हूं।
मैं हर ऋतु में गम-गमा रहा/ मैं हर मौसम में जीवित हूं/ मैं हर बच्चे की आंखों में/
मैं हर लैला के होठों पर/ मैं हर सुहाग की बिंदी में/ मैं मेहंदी रची हथेली पर।[3]

इस तरह उनकी बहुत सी कविताएं हैं जिनमें कवि का उल्लसित मन नाच उठता दिखता है। इनकी कविता में कहीं ऋतु किसान है तो कहीं चांदनी है, तो कहीं पलाश।

काट रहा है मेघ की रितु-किसान सावन में
तालों के खलिहान भर रहा, कृषक घूम वन वन में
धर हंसिया बिजली का फिरता वह किसान मस्ती में।[4]

ऋतु किसान के साथ, पलाश के साथ उनका मन नाच उठता है। मन के इस उल्लास के कारण उनमें आस्था की प्रखरता है। इस आस्था के तहत वह यथार्थ को सत्य नहीं मानते जो चला गया, उसे सत्य नहीं मानते; जो छूट गया उसे सत्य नहीं मानते; जो चला गया उसके लिए रोते रहना ही जीवन नहीं है। जीवन वह है जो अभी अपने में विद्यमान है।

सत्य नहीं वह जो चला गया/ वह तो यथार्थ था आकृति था
छाया था/ धूप था/ सत्य नहीं वह जो कुम्हला गया
वह तो संस्पर्श था/ शूल था/ कमल था
आंचल था/ रूप था /सत्य वह जो तुम में शेष है।[5]

जो अपने में बचा है उसे ही सत्य मानना और उसके जरिए संघर्ष करते रहना ही जीवन का परिचायक है। जीवन से लगाव रखने वाले आदमी को जीवन ही दिखता है मृत्यु नहीं। इसलिए उन्हें कहीं फसल काटता किसान दिख जाता है तो

कहीं कर्मरत कुम्हार का चित्र मिल जाता है। कविता में इन किसान मजदूरों का चित्रण अपना देखा हुआ अनुभव का चित्रण है, किसी मार्क्सवादी विचारधारा से लिया गया वायवीय चित्र नहीं है। बकौल नंदकिशोर नवल "*धान रोपने वाले हाथों में बहुत सा उजाला है और लोहे को पानी सा ढाल रही भट्ठी में बहुत सा उजाला है*' में आस्था खोखली नहीं लगती क्योंकि इस कविता में मार्क्सवादी सूत्र को ध्यान में रखकर किसान मजदूर की महिमा नहीं गाई गई है"।[6] जीवन में कर्म, विश्वास का स्वर जो कवि में है वह किसी विचारधारा की उपज नहीं है, बल्कि कवि के स्वविवेक की उपज है।

आस्था का दूसरा स्वर प्रेम भी है। जिसके मन में दूसरे के प्रति प्रेम न हो, तो उसकी आस्था खोखली ही मानी जाएगी। कवि का प्रेम किसी अकेले व्यक्ति के प्रति प्रेम ना होकर समूह के प्रति है। एक उदाहरण दिया जा सकता है-

तुझको देखता हूं मैं/ चीर चीर कर अपने/ जाले और धुंध और अपने आसपास/
किंतु तुमने कभी जाना नहीं/ मैं ही हूं/ पीला आभा का विसुध श्राप लिए/
दोपहर भर अपने सुलगता/ पलाश।

वह जितना अपनी प्रेयसी के लिए विरhaaग्नि में नहीं जल रहा है, उतना दूसरों के दुख-दर्द से जल रहा है। इस दृष्टि से 'भटका मेघ' कविता बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसमें आषाढ़ का बादल अपनी बेचैनी व्यक्त करता है। वह कवि के आदेश पर अलका जाते हुए, जान-बूझकर भटक जाता है। अलका के रास्ते में उसे सूखे पेड़-पौधों के अंकुओं की पुकार सुनाई पड़ती है। इससे उसका मन बेचैन हो उठता है और वह अलका जाना नहीं चाहता।

मुझे क्षमा करना कवि मेरे/ तब से अब तक भटक रहा हूं/
अब तक वैसे हाथ जोड़े हैं/ अब तक पेड़ सूखे खड़े हैं/
अब तक उजड़ी है खपरैलें में अब तक प्यासे खेत पड़े हैं।[7]

इन्हें छोड़ कर वह अलका जाना नहीं चाहता। इनसे अपना रिश्ता तोड़ना नहीं चाहता। वह उस पृथ्वी का दुख हरना चाहता है जहां पर उसने जन्म लिया है।

जिस पृथ्वी से जन्मा, उसे भुला दूं/ यह कैसे संभव है/
पानी की जड़ पृथ्वी में/ बादल तो केवल पल्लव है/
मुझमें अंतर्द्वंद छिड़ा है/ मुझे क्षमा करना कवि मेरे/
तुमने जो दिखलाया/ मैंने उससे कुछ ज्यादा देखा है/
मैंने सदियों को मनुष्य की आंखों में घुलते देखा है।[8]

इसमें कवि की सामाजिक चिंता झलकती दिखती है और यह एक दायित्वबोध, अंतर्द्वंद, बेचैनी तथा धरती और मनुष्य के साथ उसके लगाव को लेकर प्रकट होती है। कवि इस धरती और मनुष्य के लगाव को अपना दायित्व मानता है और उस दायित्वबोध को पूरा करने की बेचैनी उसमें उमड़-घुमड़ रही है। "अपने इसी दायित्व से भटकना मेघ का भटकना है जो अंततः मेघ के नहीं, कवि के मन के ही भटकने की व्यथा है"।[9] अतः इस दायित्वबोध से प्रेरित होकर अलका गए बिना धरती की प्यास हरने के लिए वह प्रतिबद्ध होता है।

मेरा मन भर आया है कवि/ अब ना रुकूंगा
अलका भूल चुकी अब तो/ इस धरती की प्यास हरूँगा
सूखे पेड़ पौधों के अब मौन पुकार सुनूंगा
सुखी रहे तेरी अलका/ मैं यही झरूंगा/ अगर मृत्यु भी मिली मुझे/ तो यही मरूंगा।
[10]

अंत की तीन पंक्तियों में कवि ने अपने संकल्प की बात कह दी है, मेघ की नहीं। मेघ तो झरने से ही खत्म हो जाता है, परंतु आगे कवि जब मरने की बात करता है तो वह अपनी ही बात है, मेघ की नहीं। यह कवि मन का निजी संकल्प है। इस संकल्प को पूरा करने के लिए वह जड़ बना रहना नहीं चाहता। यात्रा करना चाहता है। उनकी कविताओं में बार-बार यात्रा शब्द आता है। इनमें कहीं पगडंडियों की यात्रा, कभी नदी की यात्रा, तो कभी पूल की यात्रा की बात आती है। यही यात्रा ही उनके जीवन की आस्था और संघर्ष का परिचायक है। वे जड़ बना रहना पसंद नहीं करते, हमेशा यात्रा के लिए उत्सुक दिखते हैं।

मैं हूं इस नदिया का बूढ़ा पुल/ कब तक अपनी जड़ता बोहूं
मुझको भी यात्रा में परिणत कर दो।[11]

हमेशा कवि अपने को यात्रा में परिणत करना चाहता है। उन्हें रुकना पसंद नहीं है; जड़ बने रहना पसंद नहीं है। इस संघर्ष के रास्ते चलते हुए, थकान भी हो सकती है, बाधाएं भी आ सकती हैं और इससे बच निकलने के लिए वह अपनी आस्था को ही आवाज लगाते हैं।

यह सूनी-सूनी पगडंडी/ झींगुर की चौकी/ यह बेले जंगल की/
दुबके खरगोशों की यह चौकड़िया/
घबरा जाऊं वह मेरी आस्था/ मुझे आवाज लगाना तू।[12]

इस तरह हमें उनकी कविताओं में धरती के दुख को दूर करने की बैचेनी, संघर्ष और उसके प्रति अगाध प्रेम देखने को मिलता है।

## निष्कर्ष

किसी के प्रति आस्था एक अर्थ में उसके प्रति पूर्ण समर्पण भी है और पूर्ण समर्पण का मतलब दासता का स्वीकार करना भी। यह दासता उन्हें स्वीकार है। परंतु यह दासता धरती के प्रति, मानवता के प्रति, जिससे वह प्यार करते हैं। उनके लिए वे संघर्ष करते हैं; परंतु अकेले एक आत्म-गौरव के साथ। इसके लिए किसी के साथ की उन्हें जरूरत नहीं। उन्हें पता है किसी की सहायता मांगना उसके सामने झुकना है और यह दासता कभी-कभी मानवता के प्रति आस्था को भंग करती है; उन्हें किसी भी हालत पर किसी भी परिस्थिति में वह स्वीकार्य नहीं है। यह गौर करने की बात है कि उन्हें सोने की वंशी से ज्यादा वंशबट की टहनी प्यारी है। उनके पहले दौर की कविताओं में एक खास परिवेश है जिसमें नदी, पहाड़, पीपल, सावन, झाड़ी, झुरमुट, खेत, गुलाब सूर्य, चांदनी आदि प्रकृति के सारे अनुचर मौजूद हैं और इनकी खासियत यह है कि ये सब एक सामाजिक संदर्भ को लेकर सामने आते हैं। इन कविताओं के माध्यम से ही वे आस्था के, संघर्ष के गीत गाते रहते हैं। प्रकृति के प्रति और मानवीयता के प्रति उनका यह लगाव और इस लगाव के लिए, एक प्रखर आस्था और आत्म गौरव पूर्ण संघर्ष, उनकी कविता में सौंदर्य भर देता है और यही उनकी कविता की जीवन दृष्टि भी है।

## संदर्भ सूची


1. त्रिपाठी, अरविंद (सं) श्रीकांत वर्मा रचनावाली (भाग 1), राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 02, 1995, पृ. 506
2. वर्मा, श्रीकांत -भटका मेघ, भूमिका, राजपाल एंड सन्स, नई दिल्ली -,1983 पृ -2
3. त्रिपाठी, अरविंद (सं) श्रीकांत वर्मा रचनावाली (भाग 1), राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 02, 1995, पृ. 44
4. त्रिपाठी, अरविंद (सं) श्रीकांत वर्मा रचनावाली (भाग 1), राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 02, 1995, पृ. 36
5. त्रिपाठी, अरविंद (सं) श्रीकांत वर्मा रचनावाली (भाग 1), राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 02, 1995, पृ. 109
6. नवल, नन्द किशोर - समकालीन काव्य-यात्रा, पृ 164
7. वर्मा, श्रीकांत -भटका मेघ, राजपाल एंड सन्स, नई दिल्ली -2,1983 पृ -10
8. वर्मा, श्रीकांत -भटका मेघ, राजपाल एंड सन्स, नई दिल्ली -2,1983 पृ -11
9. तिवारी, विश्वनाथ प्रसाद, आलोचना (अप्रैल-जून -76) । राजकमल

प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ 35
10. वर्मा, श्रीकांत -भटका मेघ, राजपाल एंड सन्स, नई दिल्ली -2,1983 पृ - 12
11. वर्मा, श्रीकांत -भटका मेघ, राजपाल एंड सन्स, नई दिल्ली -2,1983 पृ - 33
12. वर्मा, श्रीकांत- भटका मेघ, राजपाल एंड सन्स, नई दिल्ली -2,1983 पृ -28